शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 86-90

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ. शिवा नन्द बाजपेयी
प्राच्यसंस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ.

Corresponding Author :
डॉ. शिवा नन्द बाजपेयी
प्राच्यसंस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ.

श्रीमद्भगवद्गीता : माहात्म्य और लोकजीवन का समन्वय

शोध सार : भारतीय सभ्यता विश्व की सर्वाधिक प्राचीन और विशिष्ट सभ्यताओं में गिनी जाती है। इसके मूल में वेद-वेदांग, उपनिषद्, दर्शन, महाभारत, रामायण इत्यादि संस्कृत वाङ्गमय में वर्णित ज्ञान -विज्ञान की विधि है। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का एक अंश है। उपनिषद्, दर्शन,पुराण इत्यादि शास्त्रों में जो ज्ञान निहित है उसका सार गीता में वर्णित है।गीता किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रन्थ नहीं है, अपितु ऋषियों का समग्र चिंतन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव कल्याण के लिए है, किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं प्रत्यक्ष रुप से मानव को विशेष जीवन दर्शन प्रदान करती हैं।लोक श्रुति प्रसिद्ध है- **यादृशं यस्य दर्शनं तादृशं तस्य जीवनम्।** वस्तुत: मानव-चरित्र के व्यवहार का जो मर्यादित स्वरूप है,वहीं जीवन मूल्यों पर आधारित आचार संहिता है। गीता यह कहती हैं कि व्यक्ति को हर परिस्थिति में समान रहना चाहिए तथा कर्म की बात पर विशेष बल दिया गया है वह भी निष्काम कर्म। गीता में लोक-कल्याण की बात कही गई है। व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के कल्याण में योगदान करें।

कूट शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता,कर्म, लोक-कल्याण, अध्यात्म, कर्तव्य, स्वार्थ, समाज, धर्म।

प्रस्तावना : गीतामृत एक लोकपेय उत्कृष्ट दुग्ध है,जिसे गोपालकृष्ण ने अर्जुनरूपी वत्स(बछड़ा)के द्वारा सम्पूर्ण उपनिषद् रूपी गायों को फंसाकर विद्वान भोक्ता (उपभोक्ता)के लिए स्वयं ही दुहा था ।ऐसी परमोत्तम शास्त्र-स्वरूपा गीता को ही भली-भांति पढ़ना उचित है,अन्य शास्त्रों के विस्तार में भला वह माधुर्य और लोक-मंगल कहां? यह गीता ही है जो स्वयं कमलनाभ नारायण के अवतार भगवान् कृष्ण के साक्षात् मुखारविन्द से बाहर प्रकट हुई है।महाभारतीय ज्ञानामृत के सार स्वरूप एवं परमात्मा श्रीकृष्ण के मुखकमल से निकले गीता रुपी गंगाजल का पान करने से पुनर्जन्म नहीं होता और मुक्ति हो जाती है। शास्त्र तो एक ही है जिसका अद्भुत गान देवकीनन्दन कृष्ण ने किया है, एकमात्र सर्वोपरि देव भी वही है,उसका लोकमंगलमय नाम ही एकमात्र श्रेष्ठ मंत्र है तथा

उस विशिष्ट देव श्रीकृष्ण की सेवा ही एकमात्र परमकल्याणकारी कर्म है। शारीरिक मल निवृत्ति के लिए प्रतिदिन जल स्नान करने का कष्ट होता है परन्तु एक बार यदि सच्चे मन से गीता-जल में स्नान हो जाए तो मानव के समस्त सांसारिक मल तत्काल सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं। गीताध्ययन और प्रणायाम से वर्तमान और विगत जीवन के सकल पाप विनष्ट हो जाते हैं।अतएव इस पवित्र एवं पुण्यप्रद गीताशास्त्र को नित्य नियमपूर्वक पढ़ने वाला पुरुष सांसारिक भयशोक आदि समस्त बधाओ से निवृत्त हो साक्षात् विष्णुपद (परमधाम)को प्राप्त होता है।

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यःपठेत्प्रयतःपुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकदिवर्जितः।।1।।
गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
शैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।2।।
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने-दिने।
सुकृदगीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्।।3।।
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र-विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।4।।
भारतमृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।
गीता-गड्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।5।।
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पदार्थों वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।6।।
एक शास्त्रं देवकीपुत्र गीत मेको देवों देवकीपुत्र एवं।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।7।।

श्रीमद्भगवद्गीता का गौरव गायत्री से भी बढ़कर है क्योंकि गायत्री-जप से केवल जपकर्ता ही भोग और मोक्ष प्राप्त करता है परन्तु गीता का अभ्यास करने वाला पुरुष तो मुक्तिदाता भगवान को ही अपने अधीन कर लेता है । मुक्ति उसकी दासी बन जाती है।वह तरन-तारन बनकर अन्यों के लिए भी मुक्ति सत्र ही खोल देता है। अतएव गीता का उद्घोष है-

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्।
स्वामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतराम।।8।।

गीता में यह बताया गया है कि जीवन की हर परिस्थिति में व्यक्ति को अपने कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिए तथा कर्म करते रहना चाहिए परन्तु उसे कर्मफल का फलदाता स्वयं नहीं समझनि चाहिए बल्कि सभी कर्मों का श्रेय ईश्वर को देना चाहिए। गीता के महात्म्य को श्री वाराहपुराण में बताया गया है- **गीतायाःपुस्तकं यत्र पाठः प्रवर्तते।**

तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि तत्र वै।।9।।

जहां श्री गीता की पुस्तक होती है और जहां श्री गीता का पाठ होता है वहां पर प्रयागादि सभी तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य नित्य एक अध्याय एक श्लोक अथवा श्लोक का एक चरण का पाठ करता है वह मन्वन्तर तक मनुष्यता प्राप्त करता है जो मनुष्य गीता के दस सात पांच चार तीन दो एक या आधे श्लोक का पाठ करता है वह अवश्य दस हजार वर्ष तक चन्द्रलोक को प्राप्त करता है। गीता के पाठ में लगे हुए मनुष्य की अगर मृत्यु होती है तो वह (पशु आदि की अधम योनियों में न जाकर) पुनः मनुष्य जन्म पाता है।

गीतार्थश्रवणासक्तो महापापयुतोऽपि वा।
वैकुण्थं समवाप्नोति विष्णुना सह चोदते।।10।।

गीता का अर्थ तत्पर सुनने में तत्पर बना हुआ मनुष्य महापापी हो तो वह वैकुंठ को प्राप्त होता है और विष्णु के साथ आनंद करता है। गीता का पाठ करके जो महात्म्य का पाठ नहीं करता है उसका पाठ निष्फल होता है ऐसे पाठ को श्रमरुप कहा है।इस महात्म्य सहित श्री गीता का जो अभ्यास करता है वह उसका फल पाता है और दुर्लभ गति को प्राप्त होता है।

लोकसंग्रह का अर्थ है -लोक का कल्याण।गीता हमें यह सिखाती है कि हमें कार्य को इस तरीके से करना चाहिए जिससे न केवल हमारी ही बल्कि समस्त समाज की भी भलाई हो सके। मनुष्य अपने कर्तव्यों को करने में स्वतंत्र है हमें अपनी आसक्ति और ममता का त्याग करके अपने निर्धारित कर्तव्य कर्मों को करना चाहिए। गीता में लोक संग्रह (जन कल्याण)के लिए बातें कही गई है -

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।11।।

जो आचरण महापुरुष लोग करते हैं, समाज उसी का अनुकरण करता है।उसी के आचरण को प्रमाण माना जाता है। अतः बड़े लोग अपना आचरण आदर्श कोटि का रखने के लिए स्वयं सचेष्ट रहते हैं। यदि बड़े लोग आलस्य छोड़कर कर्म न करते रहे तो छोटे लोग भी कर्मों का त्याग कर देते हैं।ऐसी अवस्था मे समाज को पथभ्रष्ट करने एवं संकरत्व उत्पन्न करने के लिए बड़े लोग ही उत्तरदायी माने जाते हैं।

सक्ता: कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुलोकसंग्रहम्।।12।।

लोकसंग्रह (जन कल्याण)के लिए ही विद्वान्मनुष्य भी अविद्वान की तरह सांसारिक कार्यों को करता रहता है। दोनों में अंतर यह है कि विद्वान व्यक्ति अज्ञानी की तरह आसक्ति नहीं रखता है। विद्वान व्यक्ति किसी अल्पज्ञ को अपने ज्ञान के प्रदर्शन से, उसके कार्य से विचलित न करे।सभी को स्वधर्म में निरत रहने के लिए प्रेरित करता रहे ।यही लोकोपकार है।जब व्यक्ति अपने कार्यों में ईश्वर को देखता है,तो वह लोकोपकारी कार्य करता है और अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के कल्याण में योगदान देता है।

गीता में धर्म की व्यवस्था के विषय में कहा गया है -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।13।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।14।।

जब जब धर्म की व्यवस्था पर हानि और अधर्म का प्रकोप होता है,उस समय सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का संहार करने के लिए स्वयं ईश्वर को व्यवस्था करनी पड़ती है।इस कार्य के लिए परमेश्वर अपनी विभूतियों द्वारा, युगानुकुल रुप में कार्य करते हैं। धर्म के उत्थान एवं पतन का यह द्वंद्व शाश्वत है। दोनों कार्य ईश्वर की व्यवस्था के अन्तर्गत हैं।पतन के बाद असहाय प्राणियों को उत्थान करने की व्यवस्था करके ईश्वर अपनी महिमा को प्रकट करता है। अन्यथा ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण पाना कठिन है। विपत्ति में ही ईश्वर का ज्ञान होता है जिससे परमश्रेय तक का मार्ग मिलता है।

गीता में कर्मयोग यह बताता है कि व्यक्ति को कर्म के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए।सभी परिस्थितियों में समान भाव बनाए रखना चाहिए।

सुख दु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।15।।

युद्ध करने से पाप नहीं लगेगा।इस बात को कर्म योग के समत्व भाव के द्वारा सिद्ध किया गया है। जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुख के द्वंद्वों में समभाव रखकर यह करने पर ही यह संभव है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।16।।

कर्मयोगी का अधिकार केवल कर्म करने में है।फल प्राप्ति करने में उसका अधिकार नही है। अतः फल के उद्देश्य से कर्म न करना चाहिए। फलों में अधिकार न होने या उसे उद्देश्य न मानने के कारण कर्म त्याग भी न करना चाहिए।यही कर्मयोग के सूत्र हैं। कर्मयोग के मार्ग पर आरुढ होकर आसक्ति त्यागपूर्वक सफलता विफलता में समभाव रखते हुए कार्य करना ही योग है। समत्व बुद्धि योग का लक्षण एवं कर्मयोग की परिभाषा का महत्वपूर्ण अंग है।

तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष:।।17।।

अनासक्त रहने की महिमा योग मार्ग में सिद्ध है। अतः स्वधर्म का पालन आसक्ति रहित होकर करते रहना चाहिए। अनासक्त होकर कर्मयोग के सेवन से परमपद का कार्य मार्ग प्रशस्त होता है। विषय-विकारों से सावधानियों के बारे में गीता कहती हैं-

ध्यायतो विषयान्पुंस: संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते काम:
कामात्क्रोधोऽभिजायते।।18।।

विषयों का स्मरण करने से उनसे आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से कामना (पाने की इच्छा)तथा कामना सिद्ध न होने पर क्रोध होता है।क्रोध से बुद्धि मूढ़ हो जाती है जिससे स्मृति दोष और भ्रम होता है ऐसा होने पर विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है और जीव का पतन होता है। गीता व्यक्तिगत आत्मसाक्षात्कार और समाज कल्याण के बीच एक अद्भुत संतुलन स्थापित करती है, जहां व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हुए सामाज के प्रति अपने कर्तव्यों का भी पालन करता है।

वाराह पुराण के अनुसार तो गीता स्वयं भगवान् से भी बढ़कर सिद्ध होती है। वहां भगवान ने स्वयं कहा है-

गीताश्रेयऽहं तिष्ठामि गीता में चोत्तम गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान्
पाल्याम्यहम्।।19।।

महाभारत के भीष्म-पर्व (43/2)में गीता को सर्वशास्त्रों से निर्मित बताया गया है। अर्थात गीता में सभी शास्त्रों का सार तत्व विद्यमान है।**(सर्वशास्त्रमयी गीता)।।20।।**इतना ही क्यों , श्री वेदव्यास जी ने तो इसे स्वयं पद्मनाभ(नारायण)के मुख से निकला हुआ बतलाकर यह सिद्ध कर दिया है कि गीता स्वयं ब्रह्मा और वेदों से भी बढ़कर है क्योंकि ब्रह्मा जिस नारायण की नाभि से निकले हुए कमल से प्रकट हुए -साक्षात् नाभि से नहीं।उसी नारायण के दिव्य शरीर के साक्षात् मुख से गीता जी निकली हैं। अतः उत्पत्ति स्थान और उत्पत्ति क्रम की दृष्टि से बृह्मा की अपेक्षा गीता का महत्व अधिक है। इसके अतिरिक्त वेदों से भी गीता बढ़कर है क्योंकि वेदों की उत्पत्ति नारायण पुत्र बृह्मा से हुई है और गीता को साक्षात् नारायण की मुखोद्गता मुख्य पुत्री है। गीता जगत्पावनी मुक्तिदायिनी गंगा से भी बढ़कर है। कारण, गंगा अपने आपसे चलकर आने वाले और अपने जल में स्नान करने वाले पुरुष को ही तारती और मुक्त करती है परन्तु गीता तो घर -घर जाकर न केवल उन्हीं को मुक्त करती है जो उसका अध्ययन करते हैं अपितु वह गीता -गंगा में स्नान करने वाले पुरुष को ऐसा सामर्थ्य दे देती है कि वह अपने अतिरिक्त अन्य लोगों को भी तार सकता है, मुक्त कर सकता है - **मुक्तश्चान्यान्विमोचयेत्।**

इसके अतिरिक्त गीता में भगवान् ने अपने प्राणतत्व एवं अपने हृदय तत्व की प्राण-प्रतिष्ठा की है।गीता उनकी अपनी स्वरचित अमर कविता है।लोगों को तो अपनी सरस-नीरस सभी प्रकार की कविता अत्यन्त प्रिय होती है फिर जिस कविता में अखिल विश्व के परमदेव ने अपनी प्राणवंशी के शाश्वत मधुर स्वरों से जीवन का आह्लाद समाया हो और उसे ब्रह्मानन्द रस से समाप्लावित किया हो। जयदयाल गोयनका गीता के विषय में लिखते हैं - **"शास्त्रों का अवलोकन और महापुरुषों के वचनों का श्रवण करके मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि संसार में श्रीमद्भगवद्गीता के समान कल्याण के लिए कोई भी उपयोगी ग्रन्थ नहीं है। गीता मे ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं, उनमें से कोई भी साधन अपनी श्रद्धा,रुचि और योग्यता के अनुसार करने से मनुष्य का शीघ्र कल्याण हो सकता हे।"**

गीताशास्त्र के अध्ययन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,शूद्र, स्त्री, पुरुष,बालक,युवक,वृद्ध, पुण्यात्मा और पापात्मा आदि मानवमात्र का अधिकार है परन्तु श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के साथ ही।अन्यथा इससे परम गति एवं परम कल्याण का प्राप्ति का लाभ नहीं सिद्ध होगा।यह केवल विरक्त सन्तों एवं संन्यासियों का ग्रन्थ नहीं है।यह गृहस्थों और बालकों का भी पाठ्य-ग्रन्थ है।बालको इसे अवश्य पढ़ाना चाहिए।इसे पढ़कर बालक बालक संन्यासी बन जाएंगे यह समझना बहुत बड़ी भूल है।जिस गीता ने भिक्षा मांगने तक के लिए तैयार एवं क्षात्र-धर्म से विमुख अर्जुन की भी बुद्धि को शुद्ध कर उसे आजीवन श्रेष्ठ गृहस्थ बनाए रखा,वह भला किसी को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध संन्यासी क्यों दोबनाएगी?कदापि नहीं। अतः जीवन के परम कल्याण के इच्छुक मानवों का यह कर्तव्य है कि वे मोह को त्यागकर अतिशय श्रद्धा, भक्ति एवं प्रेम पूर्वक अर्थ और भाव को समझते हुए गीता का नित्य अध्ययन और मनन स्वयं तो करें ही , साथ ही बालकों को भी इसमें उनकी रूचि उत्पन्न कराते हुए अवश्य पढ़ाएं।इसी में मानव के जीवन परिवार, समाज,देश और राष्ट्र का परम कल्याण निहित है। गीता ही वह ग्रन्थ है जिसके कारण भारत जगद्गुरु था, जगद्गुरु है और बना रह सकेगा।हम सब इसके लिए सतत् प्रयत्नशील रहें।

निष्कर्ष : श्रीमद्भगवद्गीता यह हमें प्रेरित करती है कि मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए साध्य प्रयास से लौकिक एवं पारलौकिक सिद्धि के लिए गीता में ज्ञान और नीति उपलब्ध है। फलाकांक्षा के बिना स्वधर्म का पालन करना बताया गया है। तथा यज्ञ, दान, तप नियत कर्मों को करना चाहिए। एकाग्रचित्त

मन ही व्यक्ति को सफलता प्राप्त करा सकता है। अहंकार और वासना ही मनुष्य को बंधन में डालते हैं इसलिए उनका त्याग करना चाहिए। गीता जीवन की समस्याओं दुखों और तनाव से बाहर निकालने का मार्ग प्रशस्त करती है।यह मानव से महामानव बनाने की और जीवन जीने की कला सिखाती है। गीता तनाव , असफलताओं और आत्म संदेह जैसे मुद्दों से जुझ रहे लोगों के लिए गीता एक मार्गदर्शक की भूमिका निभाती है।गीता के श्लोक मानसिक शांति प्रदान करते हैं और जीवन जीने की नई प्रेरणा प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 1
2. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 2
3. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 3
4. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 4
5. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 5
6. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 6
7. श्रीमद्भगवद्गीतामाहात्म्यम् , श्लोक 7
8. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 12,श्लोक 7
9. वाराहपुराण, गीतामाहात्म्य श्लोक 4
10. वाराहपुराण, गीता माहात्म्य श्लोक 18
11. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 3,श्लोक 21
12. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 3,श्लोक 25
13. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4,श्लोक 7
14. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4,श्लोक 8
15. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2,श्लोक 38
16. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2,श्लोक 47
17. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 3,श्लोक 19
18. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2,श्लोक 62
19. वाराहपुराण,गीता माहात्म्य श्लोक 7
20. महाभारत, भीष्म पर्व (43/2)

•